# सूरदास के काव्य में वरह भावना

काहे को गोपीनाथ कहावत?
जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत?
सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलंक लगावत?
जो पै स्याम कूबरी रीझे सो कन नाम धरावत ?
ज्यों गजराज काज के औसर औरै दसन दिखावत(1)।
कहन सुनन को हम हैं ऊधों सूर अंत (2) बिरमावत।।

ज्यों गजराज दिखावत- (कहावत) हाथी के दात खाने के और दिखाने के और।
अंत- अनत, अन्यत्र।

- अर्थ-
- योग सन्देश से टपकने वाली गो पयों के प्रति कृष्ण की उदासीनता पर गो पयां व्यंग्य कर रही हैं- यदि हमसे अनासक्ति ही अभीष्ट है तो उनसे कह देना क गोपीनाथ नाम क्यों रखे हुए हैं ? हे उदधव ! यदि वे हमारे कहाते हैं तो भला गोकुल क्यों नहीं आते ? हमसे कभी यों ही जान-पहचान सी हो गई जो वास्तव क प्रेम नहीं था, फर भी हमें कलक लगा रहे हैं। मामली जान-पहचान के कारण भी अपना नाम गोपीनाथ रखकर हमें चढानी ही है और जो सुनेंगे वे समझेंगे क हमारा अवश्य ही उनसे पति-पत्नी का सम्बन्ध रहा है। इस प्रकार हमें कलक लगाते हैं। यदि उनका कबड़ी पर ही अनुराग है तो वे अपना नाम कब्जानाथ क्यों नहीं रखवाते। कृष्ण को प्रेम में कम से कम इतनी ईमानदारी तो बरतनी ही चाहिए। हमारी नाम की आड़ में कब्जा से यह व्यवहार करके वे सचमच टटटी की आड़ में शकार खेलने का प्रयास कर रहे हैं। जिस प्रकार हाथी के दात खाने के और दिखाने के और होते हैं, ठीक ऐसे ही कृष्ण कहने-सुनने को तो हमें रखते हैं पर रहते कहीं और हीं हैं।
- वशेष-
- राग मलार
- दृष्टान्त अलंकार -(ज्यों गजराज ....दिखावत)
- “असूया” संचारी भाव का वर्णन (सौतिया डाह)

# सूरदास के काव्य में वरह भावना

निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हँ स समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसो बरन भेस है कैसो केहि रस में अ भलासी।
पावैगो पुनि  कयो अपनो जो रे ! कहैगो गाँसी (1)।
सुनत मौन ह्वै  रह्यो ठग्यौ सो सूर सबै माति नासी ।।

गाँसी- गाँस या कपट की बात

अर्थ-

ज्ञात को छोड़कर अज्ञात के प्रति आग्रह करना मूर्खता है, हमारे सगुण “ज्ञात” है और तुम्हारा निर्गुण “अज्ञात”। गो पयां उद्धव से कहती हैं क यदि तुम्हारा निर्गुण भी हमारे सगुण के भांति ज्ञात है तो बताओ क-

यह निर्गुण कहाँ रहता है ? मधुकर ! तुम खुशी से हमें यह समझा दो। हम तुमसे शपथपूर्वक पूछती हैं, हँसी नहीं करतीं। उसके माँ-बाप का नाम बताओ तथा उसकी स्त्री और दासी का भी पता बताओ । उसका रंग-रूप बताकर उसके इष्ट रसों का भी वर्णन करो, ता क हम उसे जानकार अपने भली-भाँति परि चत प्रयतम से उसकी तुलना कर सकें । पर देखो, सब सच-सच बताना । यदि मन में कुछ भी कपट रखा तो अपना कया पाओगे । सूर कहते हैं क उद्धव उनकी ये बातें सुनकर व चत-सा अवाक् रह गया । उसकी बुद् ध हीं कुंच कर गई । कर भी क्यों न जाती ? भला जिसे उपनिषद् नेति-नेति कह कर “ न तत्रचक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति न नमः ” आदि बनाती है तथा वेद जिसका “ न तस्य प्रतिमा अस्ति ” कह के गान करते हैं, उसके रूप रंग आदि का वर्णन करना आकाश कुसुम लाने के सामान असंभव है।

वशेष-

राग सारंग

गो पयों का वाग्वैध्दग्य ।

निर्गुण ब्रम्ह का खण्डन वंग्य शैली द्वारा ।

# सूरदास के काव्य में वरह भावना

ऊधो ! जान्यो ज्ञान तिहारो ।
जानै कहा राजगतिलीला अंत अहीर बिचारो ।।
हम सबै अयानी, एक सायानी कुबजा सों मन मान्यो।
आवत नाहिं लाज के मारे, मानहु कान्ह खस्यान्यो (1) ।।
ऊधो जाहु बाँह धरि ल्याओ सुन्दरश्याम पयारो ब्याहौ लाख,
धरौ (2) दस कुबरी, अंतहि कान्ह हमारो ।।
सुन , री सखी ! कछू नहिं कहिए माधव आवन दीजै ।
जबहीं मीलैं सूर के स्वामी हाँसी करि करि लीजै ।।

खस्यान्यो - लजाया।
धरौ - रखे, बैठा ले।

अर्थ -

जब उद्धव ने योग का सन्देश गो पयों के सम्मुख रखा तो वे बड़ी वस्मित हुई। सोचने लगीं आ खर यह अनघटना

घटी कैसे ? उन्होंने अनेक मनगढ़न्त कल्पनाओं के आधार पर उससे कारणों का अंदाज लगाया । उन्हीं कारणों में से कुछ कारण इस पद में वर्णन कये गए हैं । गो पया उद्धव से कहती है -

तुम्हारे ज्ञानोपदेश का रहस्य अब खुला ! वह हमारा प्रयतम राजकीय गति व धयों को क्या जाने । आ खर बेचारा अहीर ही जो ठहरा। हम सब को अज्ञानी ज्ञानकार वे बिचारे छोड़ गए और हमें शायद ज्ञानी बनाने के लए यह ज्ञान भजवा दिया और उन्हें अकेली कुब्जा ही ज्ञानी दिखाई दी इस लए उसी से मन लगा बैठे । पर वास्तव में बात ऐसी नहीं थी , यह उन्हें बाद में मालूम पड़ा। अब पछताने से क्या होता है ? सो बेचारे ख सयाकर लज्जा के मारे अब यहाँ नहीं आते । ( और ख सयाना भाइ दिवाली गता है सो वह भी ज्ञान बघारने लगे ) । परन्तु उद्धव ! हम वश्वास दिलाती हैं क उन्हें इसके लए बनाएगी नहीं, तुम जाकर उन्हें बाँह पकड़ कर ` लवा लाओ । भले ही कृष्ण लाखों ब्याह लें और कुबरी सरीखी दसों को घर में डाल लें, पर अंत में कृष्ण रहेंगे हमारे ही । इस प्रकार कहती हुई एक गोपी दूसरी से यह सोच कर क़ी कहीं उद्धव उन्हें जाके यह सब बतला न दें, ता क वे और भी सतर्क न हो जाएं और फर न आए - रोककर कहती है क सखी ! सुनो अभी से कुछ मत कहो । माधव को आ जाने दो और जब वे सूर के स्वामी श्रीकृष्ण मल जायें तो उनसे खूब जी-भरकर मजाक कर लेना ।

वशेष -

अंत अहीर बिचारो से प्रयतम वषयक राति को अ प्रयु शब्दों से व्यक्त करने के कारण “बिब्बोक” नामक हाव है।

गो पयों का वाक् चातुर्य दर्शनीय है।

अंतिम पंक्ति में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है।

# सूरदास के काव्य में  वरह भावना

उर में माखन चोर गड़े ।
अब कैसहु निकसत नहीं, ऊधो ! तिरछे ह्वै जो अड़े ।।
जद प अहीर जसोदानंदन तद प न जात छँडे ।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बडे ।।
को बसुदेव, देवकी है को, ना जानैं औ बूझैं ।
सूर श्यामसुंदर बिनु देखे और न कोऊ सूझैं ।।

अर्थ -

गो पयाँ उदधव से कहती हैं क हमारे अन्त:करण में कष्ण ऐसे अड़ गए हैं क निकल ही नहीं सकते, फर दसरे के लए यहा स्थान कहा से आ सकता है ? वे भले हो या बरे, हम उन्हें छोड़ नहीं सकती। इसी भाव को व्यक्त करती हुई गो पयाँ उद्धव से कह रही हैं-

उदधव ! हमारे हृदय में माखन चोर गढ़ रहे हैं । योग को अपनाने के लए उन्हें उखाड़ भी फेके, पर क्या क़रे वे कसी भी प्रकार नहीं निकलते। बात यह है क हृदय में जाकर तिरछे होकर फ़स गए हैं, इस लए अतर्घट को बिना फोड़े वे निकल नहीं सकते। भाव यह है क कष्ण की बाँकी अदायें हृदय में ऐसी समा गई है क उन्हें अलग करना हमारे बस का नहीं है। उन्हें अलग करने के लए हमारे हृदय को तोड़ फोड़ के नष्ट करना होगा। पर यदि कहो क वे तो गवार अहीर हैं, उनसे प्रेम करना हमें फ़बता नहीं, तो हमारा कहना यही है क यशोदानदन, यदय प अहीर हैं तो भी हमसे छोड़े नहीं जाते। यदि वे अहीर हैं तो हम भी तो अहीरिन ही हैं। इससे क्या ? आप तो महाकलीन यदवशी हैं, इस लए तम्हारा प्रेम तम्हारे सम में होना चाहिए ? इसका उत्तर देती हुई गो पयाँ कहती हैं - वे अभी मथुरा जाके यदवश कल के बन गये अवश्य , पर हमें बड़े नहीं लगते । जिनके वे पत्र कहला रहे हैं- वे वसदेव और देवकी कौन हैं ? उनसे हमारी जान-पहचान नहीं । हम तो उन्हें नन्द-यशोदा का प्रेय लाल समझती हैं और उनका कत्रिम महत्व हमारे प्रेम में बाधक नहीं हो सकता। सर कहते हैं क गो पयों ने अत में साफ-साफ कह दिया क हमें कृष्ण को बिना देखे चैन नहीं। हमें इस वयोग में भी और कोई सूझता ही नहीं है। हम क्या करें, लाचार हैं।

वशेष -

राग केदार

कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा का चत्र है।

यह पद वंग्य प्रधान है।

# सूरदास के काव्य में वरह भावना

मधुकर ! मन तो एकै आहि ।
सो तो लै हरि संग  सधारे जोग  सखाबत काहि ?
रे सठ, कुटिल बचन, रसलंपट ! अबलन तन धौं चाहि (1)।
अब काहे को देत लोन हौ बिरहअनल तन दाहि।।
परमारथ उपचार करत हौ, बिरहब्यथा नहिं जाहि।
जाको राजदोष कफ ब्यापै दही खवावत ताहि ।।
सुन्दरश्याम-सलोनी-मूरति पूरि रही हिय माहिं।
सूर ताहि तजि निर्गुन  संधुहि कौन सकै अवगाहि ?
चाहि- तू देख

अर्थ -

गो पयाँ योग की अनपयक्तता बताती हुई उदधव से पनः कह रही हैं क अरे मधकर ! जरा सोचो तो मैन कोई दस-बीस थोड़े ही हैं ? वह तो एक ही है और उसे भी श्रीकृष्ण जी अपने साथ ले गए हैं; अब आप योग की शक्षा कसे दे रहे हैं ? अरे धत ! बेतकी बात करने वाले स्वय रास के लोभी ! जरा औरतों की दशा देख के बात करो। वरहाग्नि से शरीर को सन्तप्त करके बार-बार जले पर नमक क्यों छिड़क रहे हो ? अध्यात्मवाद का उपदेश देके परमार्थ सद ध की राह बताने से हमारी वरह व्यथा नहीं मट सकती। भला सन्निपात की उग्र अवस्था मे जब कफ घरघराने लग जाता है तब उसे दही खलाना कहाँ तक उ चत है ? यह तो उसके सर्वनाश का ही कारण होगा। इसी प्रकार वरह मे परमार्थ का उपदेश हमारे लए उलटा पड़ेगा। हृदय को शाति नहीं मलेगी और अ धक सताप ही बढ़ेगा। सूर कहते हैं क गो पयों ने उदधव से कहा क जब हृदय मे सुन्दर सलोनी श्याम की मति व्याप्त हो तो उसे छोड़कर निर्गुण के दुस्तर सागर का अवगाहन कर सकना कसकी सामर्थ्य मे है। अतएव आपका यह निर्गुण का उपदेश हमारे लए सर्वथा निरर्थक है।

वशेष-

राग धनाश्री

इस पद में नीदर्शनालंकार है।

वरह अनल-रूपकालंकार है।

ऊधो पर खीझ कर गो पयाँ उन्हें नए वशेषणों से अलंकृत करती है।